

प्रवचन नं.-३ श्लोक -२ ता. ९-६-७८ शुक्रवार, जेठ सुद-४ सं. २५०४

समयसार के दूसरे कलश का अर्थ है। भावार्थ :- दूसरे कलश का भावार्थ है ना ? पहले देव की स्तुति की। देव में इष्टदेव स्वयं आत्मा, उसकी भी की और इष्टदेव परमात्मा उसकी भी उसमें आ गई अब दूसरी शास्त्रकी... देव-शास्त्र-गुरु तीन... शास्त्र की विनय भक्ति करते हैं सदा प्रकाशित रहो - ऐसा कहेंगे।

‘यहाँ सरस्वती की मूर्ति को आशीर्वचन।’ आशीर्वाद (रूप) वचन अर्थात् आशीर्वाद-आशीर्वाद (रूप) नमस्कार किया है, आशीर्वादर्प नमस्कार किया है। लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है वह यथार्थ नहीं है, इसलिये यहाँ उसका यथार्थ वर्णन किया है।

‘जो सम्यग्ज्ञान है वह ही सरस्वती की सत्यार्थ मूर्ति है’ सच्ची मूर्ति तो सम्यग्ज्ञान है, उसमें भी सम्यग्ज्ञान में सम्पूर्णज्ञान तो केवलज्ञान है, कि जिसमें सभी पदार्थ प्रत्यक्ष दिखते हैं। वे अनंत धर्मों सहित आत्म तत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं। केवलज्ञानकी मूर्ति, केवलज्ञान स्वरूप अनंतधर्मों सहित आत्मतत्त्व, अपने तत्त्व को देखती है केवलज्ञान में प्रत्यक्ष देखती है, अतः **‘वह सरस्वती की मूर्ति है,’** इसलिये वह सरस्वती की मूर्ति कहलाती है।

‘तदनुसार केवलज्ञान को अनुसरण करके जो श्रुतज्ञान है वह आत्मतत्त्व को परोक्ष दिखलाता है’। परंतु यहाँ यह खूबी है, वह कहते हैं ना कि केवलज्ञान की अपेक्षासे तो क्रमबद्ध बराबर है। वह कहते हैं। केवलज्ञान की अपेक्षा क्रमबद्ध बराबर है परंतु श्रुतज्ञान की अपेक्षासे नहीं। श्रुतज्ञान तो क्रम और अक्रम दोनों (प्रकार से) जानता है।

इसलिये यहाँ अनुसारी शब्द ग्रहण किया है। इसकी बड़ी चर्चा हो चुकी है। (पं.) फूलचन्द्रजी ने चर्चा की है। वैसे केवलज्ञान की अपेक्षासे देखो तो वह व्यवस्थित है, प्रत्येक पदार्थ की पर्याय क्रमबद्ध है। जिससमय जहाँ जो होना है वही होगी, परंतु श्रुतज्ञान के अनुसार - ऐसा नहीं, कारण कि श्रुतज्ञान परोक्ष है इसलिये इसे क्रम और अक्रम दोनों होते हैं, वह लोग - ऐसा कहते हैं। तब केवलज्ञान अनुसार नहीं हुआ वह तो कल्पना के अनुसार हुआ। समझ में आता है ? - ऐसा कहते हैं, सभी वो लोग पंडितजी (फूलचन्द्रजी) के सामने, केवलज्ञान के हिसाब से क्रमबद्ध बराबर है। पहले से ही सभी विरोध क्रमबद्ध का था, वह सं. २०१३ की साल से क्रमबद्ध नहीं, एक के बाद एक होता है परंतु इसके बाद यह ही हो और यही हो - ऐसा नहीं। यहाँ तो केवलज्ञान के अनुसार तो एक के बाद एक ही होना है वह ही हो तब क्रमबद्ध है। परंतु खानियाँ चर्चा में श्रुतज्ञान में, उन लोगों ने फर्क किया। - ऐसा कि श्रुतज्ञान केवलज्ञान के अनुसार नहीं वह तो छद्मस्थ है इसलिये उन्हें क्रमसर भी होता है और अक्रम भी होता है। लिखा है ना ?

तब यहाँ तो कहते हैं; तदनुसार है ना ? तदनुसार जो श्रुतज्ञान, (हो) उसका नाम श्रुतज्ञान कहलाये, केवलज्ञान के अनुसार कहें (और) जानें, वह श्रुतज्ञान कहलाता है। *केवलज्ञानानुसार न हो और अपनी कल्पना से जाने वह श्रुतज्ञान नहीं कहलाता, वह तो कुज्ञान कहलाता है।* बड़ा फर्क है ! बड़ा अंतर है, शुरुआत में ही बड़ा फर्क है, बड़ा फर्क ! वस्तु है वह व्यवस्थित है परंतु उसका हेतु भी व्यवस्थित है। *जिस समय होनेवाली जो पर्याय उसी समय हो आगे पीछे नहीं उसका हेतु 'अकर्त्तापना' है। पर्याय का कर्त्तापना नहीं, पर्याय होती है उसे करें क्या ? और अकर्त्तापने का हेतु ज्ञातापना है। अकर्त्ता नास्ति से है ज्ञाता अस्ति से है, जाननेवाला देखनेवाला है बस !!* जिस समय जो जहाँ हो, अपनी पर्याय भी जिस समय हो, उसे वह जाननेवाला देखनेवाला है। बदलनेवाला कि बनानेवाला नया बनाता है - ऐसा नहीं। (कि) वहाँ नयी रचना होती ही है, उसे बनाना पड़ता नहीं। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म ! पंडितों के बीच बड़ी चर्चा चली (श्रोता: भगवान ने कहा कि नियत और अनियत है)

कहा नहीं ? क्रम और अक्रम है - ऐसा कहा, उसने श्रुत (ज्ञान) के अनुसार नियत अनियत, क्रम और अक्रम है। केवलज्ञान की अपेक्षासे नियत (निश्चित) है। उसका अर्थ क्या ? श्रुतज्ञानी केवली के अनुसार मानते कि अपने अनुसार मानते हैं ? बड़ा फर्क बड़ा विवाद था ना ?

यहाँ यह कहते हैं। केवलज्ञानी ने अनंतधर्मवाला आत्मा जिसप्रकार है उसी प्रकार देखा, जाना। इसलिये केवलज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है। *तीन बातें लेंगे तीन...*

केवलज्ञान, श्रुतज्ञान और वाणी, सरस्वती की मूर्ति के तीन प्रकार..... एक तो यह लिया 'तदनुसार' केवलज्ञान को अनुसरण करके... बजन यहाँ है (शास्त्र में) चिन्ह भी किया है, वहाँ जो श्रुतज्ञान है, वह आत्म तत्त्व को परोक्ष देखता है। केवलज्ञान आत्मतत्त्व को अनंत धर्मसहित क्रमसर होते देखता है, इसीप्रकार श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान के अनुसार अनंत धर्मसहित तत्त्व को, क्रमबद्ध होती पर्यायों को (श्रुतज्ञान) जानता है। - ऐसा है।

परोक्ष देखता है। पहले आया था कि श्रुतज्ञान कथंचित प्रत्यक्ष और कथंचित परोक्ष है। पहले (कलश) में आया था। नमः समयसाराय में। क्योंकि श्रुतज्ञान अपने को जानता है भावश्रुतज्ञान। इसमें पर की अपेक्षा राग की नहीं, इस अपेक्षासे प्रत्यक्ष है और यह पूरण देख सकता नहीं। असंख्य प्रदेश और अनंतगुणों की अपेक्षा से (अतः परोक्ष) और केवलज्ञान की अपेक्षा से उसे परोक्ष है। कथंचित परोक्ष और कथंचित प्रत्यक्ष इसप्रकार है। केवलज्ञान सर्वप्रत्यक्ष ही है वहाँ कथंचित प्रत्यक्ष और कथंचित परोक्ष नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें याद रहे... स्वरूप ही - ऐसा है।

सर्वज्ञ भगवान, जो छह द्रव्य हैं उनकी जिस समय जो पर्याय नियम से हो उनको उस, उस प्रकार देखते हैं। श्रुतज्ञानी भी नियम से देखे और अनियम से देखे, नियत भी देखे अनियत भी देखे, तो केवलज्ञान अनुसार श्रुतज्ञान रहा नहीं, तो (वह) श्रुतज्ञान ही नहीं। आहाहा ! थोड़ा फर्क लगे, परंतु अंदर फर्क बहुत हो जाता है क्योंकि आत्मा स्वयं सर्वज्ञस्वरूप ही है। सर्व को जानने के स्वरूपवाला ही है। वास्तव में तो वह अपनी पर्याय की रचना करता - ऐसा भी कहाँ है वहाँ ? होता है उसे जानते हैं। आहाहा ! इसीप्रकार अनंत द्रव्यों की पर्यायों होती हैं उन्हें जानते हैं। पर को (जानते) हैं - ऐसा कहना भी व्यवहार है, निश्चय से तो अपनी पर्याय को जानते हैं। आहाहा ! ऐसी बात है।

'आत्मतत्त्व को परोक्ष देखते हैं इसलिये वह भी (श्रुतज्ञान) सरस्वती की मूर्ति है, केवलज्ञान एक समय में पूरण प्रत्यक्ष देखता (है) इसलिये वह सरस्वती की मूर्ति कहलाता है।, तदनुसार श्रुतज्ञानी भी परोक्ष देखते हैं, इसकारण वह भी सरस्वती की मूर्ति (कहलाती है)। वह अन्य मतवाले, (जो) मूर्ति कहते हैं वह नहीं। मोर के ऊपर सरस्वती बैठी है और सरस्वती वीणा बजाती है, वह तो सभी कल्पनायें है। यह तो सम्यग्ज्ञानरूपी सरस्वती ! जो पूर्ण स्वरूप को प्रत्यक्ष देखे (केवलज्ञान) और श्रुतज्ञानरूपी परोक्ष सब देखे, परोक्ष भी, परंतु देखे सब, इसलिए इसे भी यहाँ सरस्वती की मूर्ति (कहा) श्रुतज्ञान अरूपी भाव को परोक्ष सरस्वती कहा। केवलज्ञान को प्रत्यक्ष सरस्वती की मूर्ति कहा।

अब तीसरा :- 'द्रव्यश्रुतवाणी, वाणी को भी सरस्वती कहा जाता है' द्रव्य श्रुत अर्थात् वाणी है वह वचनरूप है, वह भी उसकी मूर्ति है। वाणी, वीतराग की वाणी है वह भी ज्ञानी की वाणी है वह भी एक मूर्ति है 'कारण कि वचनों द्वारा अनेक धर्मोवाला', उन अनेक धर्मों को सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखते हैं, श्रुतज्ञानी अनेक धर्मों को परोक्ष देखते हैं, 'द्रव्यश्रुत में वाणी द्वारा अनेक धर्मोवाले आत्मा को वह बताते हैं' इतना फर्क (है) वह (ज्ञान) तो देखता है। यह वाणी देखती नहीं, वाणी बतलाती है। वीतराग की वाणी द्रव्यश्रुत जो है वह वचनरूप है। वह भी उसकी मूर्ति है कारण कि वचनों द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बताती है। देखती है यह यहाँ नहीं लेना, वाणी द्वारा देखती है - ऐसा नहीं, बताती है। फिर देखनेवाला देखता है उसमें वाणी निमित्त है, वह अलग बात है।

'इस तरह सर्व पदार्थों के तत्त्वों को दिखानेवाली,' सर्व पदार्थों के तत्त्वों को दिखानेवाली, पहले आत्मा को कहा था, कहा था न ? पहले कहा सर्वपदार्थ प्रत्यक्ष दिखते हैं। अनंत धर्म सहित आत्म तत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं। केवलज्ञान में - ऐसा आया था। सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष दिखते हैं वह भी अनंत धर्मों सहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं, इसप्रकार और यहाँ सर्व पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली 'ज्ञानरूप' केवल और श्रुत और वचन अनेकांतमय सरस्वती की मूर्ति है। अनेकांतमय, अनेक स्वरूप है, अनंत धर्म हैं ना। अतः अनेकांत कहा, अनेकांत अनेक अन्त, अनेक धर्म। आत्मा में अनंत धर्म है और प्रत्येक पदार्थ में अनंत धर्म है। उन अनंत धर्म को जाननेवाली और कहनेवाली उसे यहाँ सरस्वती की मूर्ति कहा जाता है। आहाहा !

'इसलिये सरस्वतीके नाम वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी, आता है न,' (नमो देवी वागेश्वरी जैन वाणी) इत्यादि बहुत कहा जाता है। **यह सरस्वती की मूर्ति अनंत धर्मों को 'स्यात्' पद से एक धर्मों में...** एक वस्तु में अपेक्षा से अविरोधपने साधती (कहती/ जानती) है। नित्य है उसी को अनित्य कहती है, अनित्य है उसे नित्य कहती (दिखाती) है। कायम रहे इसलिये नित्य है, पलटे इसलिये अनित्य है - इसप्रकार अनेक धर्मों को वह सरस्वती साधती है। आहाहा ! इसलिये वह सत्यार्थ है, इसलिये केवलज्ञान श्रुतज्ञान और वाणी तीनों ही सत्यार्थ हैं। क्योंकि वह अनंत धर्मों को धारण करनेवाले द्रव्य को अनंत धर्म स्वरूप है ऐसे अनेकांत अर्थात् अनेक धर्मरूप बताती है। जानती है, और बताती है, इसलिये वह सरस्वती सत्यार्थ है।

'कितने ही अन्य मतवाले सरस्वती की मूर्ति को अन्यप्रकार से स्थापित करते हैं, परंतु वह पदार्थों को सत्यार्थ कहनेवाली नहीं वस्तु जिसने जानी नहीं। जिसका सर्वज्ञ स्वभाव (है), आत्मा का सर्वज्ञ स्वभाव ही है बस ! सबका जानना, अभव्य हो

कि भव्य, सभी का स्वभाव से सर्वज्ञशक्ति और सर्वज्ञ स्वरूप ही आत्मा है। जानना इतना ही उसका स्वरूप है। किसीका करना कि किसी से अपने में कराना - ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं। जानना, सभी जानना। आहाहा ! अन्यथा कहे वह सत्यार्थ नहीं।

‘कोई प्रश्न करे की आत्मा को अनंत धर्मवाला कहा है तो उसमें अनंत धर्म कौन कौन से है ? अनंत धर्म कहे, धर्म शब्दसे आत्मा ने धारण किये हुये गुण और पर्याय उसे धर्म कहा जाता है। यहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप धर्म नहीं, आत्मा ने और पदार्थों ने स्वयं अपने गुण और पर्याय को धारण कर रखा (है) अतः उसे धर्म कहा जाता है। **धर्मी ने अनंत धर्मों को धारण कर रखा है अर्थात् अनंतगुण और अनंत पर्यायों को धारण कर रखा है।** आहाहा !

उसका उत्तर :- कौन कौन से धर्म ? वस्तु में सत्पना... प्रत्येक वस्तु है वह स्वयं से है, सत् है। अस्तित्वपना मौजूद चीज है, वस्तुपना है उसमें अपना प्रयोजन सिद्ध करें - ऐसा वस्तुपना है। अपनी पर्याय को स्वयं सिद्ध करे- ऐसा प्रत्येक वस्तु का वस्तुपना है, **‘प्रमेयपना’** (प्रमेयत्व है)। प्रत्येक पदार्थ ज्ञान में ज्ञेयरूप हो, प्रमाण में प्रमेयरूप हो - ऐसा उसका स्वभाव है। प्रमाण ज्ञान में प्रमेयरूप से, ज्ञेयरूप से हो - ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे सभी धर्म अज्ञात और **‘प्रदेशपना’** सभी पदार्थों में प्रदेश है, अंश, अंश है। चाहे परमाणु हो फिर भी उसमें एक अंश है ना ?

जीव में असंख्य प्रदेश हैं, आकाश में अनंत प्रदेश हैं धर्मास्ति, अधर्मास्ति में असंख्य (प्रदेश) हैं, परंतु प्रदेशत्वपना वह उनका धर्म (अर्थात्) धारण किया हुआ (स्वभाव) है प्रदेशपना - ऐसा धारण किया हुआ तत्त्व है - ऐसा अन्यमत में कहीं नहीं। असंख्य प्रदेशी और अनंतप्रदेशी, जीव असंख्यप्रदेशी (है) - ऐसा अन्यत्र नहीं। उसने असंख्य प्रदेश धारण कर रखे हैं, आत्मा का यह एक - ऐसा धर्म है। **‘चेतनपना’** जीव में चेतनपना यह उसका स्वभाव है। अजीव में अचेतनपना वह उसका स्वभाव है। **‘मूर्तिकपना’** जड़ में (पुद्गल का) मूर्तिकपना यह उसका स्वभाव है। **‘अमूर्तिकपना’** आत्मा और धर्मास्तिकाय आदि में अमूर्तिकपना यह तो उसका गुण है आहाहा ! है ?

‘और उन गुणों का, उन अनंत गुणों का, तीनों काल समय-समय पर परिणमन होना, आहाहा ! वह पर्याय है’ यह भी उसका धर्म है। प्रत्येक द्रव्य का अनंतगुण भी उसका धर्म धारण किया हुआ है और प्रत्येक द्रव्य तीनों काल समय समय में परिणमन करते हैं। इसलिये उसकी पर्याय (का होना) भी उसका धर्म है। वह पर्याय पर के कारण होती है - ऐसा नहीं। **चाहे तो विकारी हो कि अविकारी परंतु परिणमन रूप पर्याय उसका अपना धर्म है।** समझ में आया ? फिर कर्म के कारण विकार

हो और आत्मा के कारण कर्म का बंध हो यह बात रहती नहीं। सर्वज्ञ के कारण क्या हो (सकता) ? स्वयं स्वयंकी आत्मा के कारण अपना ज्ञान होता है।

यहाँ वाणी को निमित्त कहेंगे। निमित्त कहेंगे। परंतु निमित्त का अर्थ: वह उससे होता है - ऐसा नहीं। वाणी निमित्त है इसलिये उसे सदाप्रकाशरूप रहो - ऐसा आशीर्वचन, आशीर्वचन अर्थात् आशीर्वाद कहने में आया है। आहाहाहा ! आखिरी बोल लिया है। सदा प्रकाशरूप रहो। आखिरी बोल लेंगे। मूल में तो यह बताकर यह कहना है ना ! केवलज्ञान भी सदाप्रकाशरूप रहो। श्रुतज्ञान भी सदा प्रकाशरूप रहो और वाणी भी वस्तु को बताने में सदा प्रकाशरूप रहो। आहाहा ! यह आशीर्वचन है। है ?

'देखो... अनंत पर्याय है,' फिर भी वस्तु में एकपना, प्रत्येक पदार्थ वस्तु अपेक्षा एक है और गुण पर्याय अपेक्षा अनेक है। यह भी उसके धर्म है। धारण किया हुआ (अर्थात्) एक और अनेक धारण किया हुआ भाव है। भाव कहो कि धर्म कहो। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म - यह बात अभी नहीं। यहाँ तो धारण किया हुआ हो वह धर्म बस ! ऐसी बातें है।

'एकपना, अनेकपना, नित्यपना, अनित्यपना' प्रत्येक वस्तु कायम रहने की अपेक्षा नित्य है और पलटने की अपेक्षा अनित्य है। वह भी उसका स्वभाव और धर्म है, यह पलटना और कायम रहना वह भी पर के कारण नहीं, उसका अपना धर्म है। आहाहाहा ! यहाँ तो उसका अपने अनंत गुण और उन उन गुणों की पर्यायें चाहे विकृत हो कि अविकृत, कैसी भी हों, जो उस समय हो वह उसका उस समय का धारण किया हुआ धर्म है। पर के कारण नहीं। उसका अपना स्वरूप ही - ऐसा है। आहाहाहा !

कुछ लोग - ऐसा कहते हैं एकांत है। कर्म से विकार होता है, कर्म के कारण रखड़ते हैं। अपन को क्यों केवलज्ञान नहीं होता ? कर्म के कारण। यह तो द्रव्य कर्म के कारण... यहाँ तो कहते हैं। चार अनुयोगों की एक पुस्तक छापती है ना ? 'सम्यग्ज्ञान' उसमे - ऐसा लिखती है कि '(अपने को केवलज्ञान) क्यों नहीं होता ? कर्म के कारण अपने को केवलज्ञान नहीं होता।' बिलकुल गलत बात है। अपनी पर्याय उस उस काल में अपनी धारण की हुयी योग्यता से होती है, पर के कारण नहीं और पर का अभाव हो तो यहाँ हो, यह भी नहीं आहाहा ! - ऐसा ही हरेक पदार्थ का अनंत गुण और अनंत पर्याय को रखे-धारण करे - ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा ! है ?

'भेदपना' प्रत्येक वस्तु में गुणपर्याय का भेद है और वस्तु अपेक्षा अभेद है यह भी उसका धर्म है 'भेदपना-अभेदपना' 'शुद्धपना-अशुद्धपना' आत्मा (द्रव्य अपेक्षा) शुद्ध

होती है, और पर्याय अशुद्ध... पुद्गल में भी - ऐसा होता है। परमाणु अकेला हो तो शुद्ध है और विभाव रूप में दो, तीन, चार (परमाणु इकठे) हों तो उसकी पर्याय विभाव रूप अपने से होती है, वह भी अशुद्ध होता है, अपने कारण हो ! - ऐसा अशुद्धपने का उसका अपना धर्म है। शुद्ध-अशुद्ध आदि अनेक धर्म है 'वह सामान्य रूप धर्म तो वचनगोचर हैं' कितने ही खास कहने लायक तो वचनगम्य है, परंतु कितने तो कह नहीं सकते ऐसे भी गुण हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनंत सामान्य गुण हैं अस्तित्व आदि और अनंत विशेषणगुण हैं, चेतन अचेतन आदि ऐसे अनंतधर्म है एक द्रव्य में, अनंत सामान्य हैं और अनंत विशेष है।

'यहाँ सामान्यरूप धर्म तो वचनगम्य है परंतु दूसरे विशेषरूप धर्म तो वचन के विषय नहीं ऐसे भी अनंत धर्म है। वचन से नहीं कह सकते !' वाणी जड़ है, प्रभु चैतन्य है। धर्मास्ति आदि भी अरूपी हैं, परमाणु आदि रूपी हैं। ऐसे भी अनंतधर्म हैं 'जो ज्ञानगम्य है' ज्ञानजान सकता है परंतु वाणी द्वारा उनकी विशेषतायें भेद डालकर अलग-अलग कह सकें - ऐसी ताकत वाणी में नहीं। सामान्य को कह सके विशेष के भेदों को न कह सके, फिर भी ज्ञानगम्य है। वाणी द्वारा विशेष कह नहीं सकते, फिर भी ज्ञानगम्य (होने से) ज्ञान में जानने में आयें - ऐसे हैं। आहाहा !

'आत्मा भी वस्तु है इसलिये उसमें अपने भी अनंत धर्म हैं' कितने ही सामान्य कहे जा सकते हैं, कितने ही नहीं कहे जा सकते, फिर भी ज्ञानगम्य वस्तु है ऐसे अनंत धर्म आत्मा में भी हैं। वस्तु एक धर्म अनंत, अनंतगुण और अनंती पर्याय। आहाहा ! 'एक' भी धर्म है 'अनेक' भी धर्म है 'नित्य' भी धर्म है 'अनित्य' भी धर्म है, 'भेद' भी है, 'अभेद' भी है 'सामान्य' भी है 'विशेष' भी है। आहाहा ! बहुत संक्षेप में समेटा है। 'आत्मा के अनंत धर्मों में चेतनपना असाधारण धर्म है' दूसरे अनंतगुण हैं (धर्म) परंतु चेतनपना असाधारण है अर्थात् कि दूसरे गुण चेतनरूप नहीं। अपने में भी अनंत गुण हैं परंतु चेतन तो जानने और देखनेवाले यही दो धर्म है। ऐसे - **दूसरे अनंतगुणों में यह नहीं इसलिये चेतनपना यह असाधारण अर्थात् दूसरों में नहीं, दूसरे (गुण) ऐसे नहीं। दूसरों में नहीं दूसरा - ऐसा नहीं।** आहाहा ! इसलिये चेतन का असाधारण धर्म कहा है।

आत्मा के अंदर चेतनपना असाधारण धर्म है, असाधारण अर्थात् एक ही यह वस्तु है उसमें अनंतधर्म है उसमें से कोई - ऐसा चेतन नहीं। उसी प्रकार यह चेतन दूसरे चेतन में है वह चेतन यह चेतन नहीं। उसका चेतन (पना) उसमें है और इसका चेतन (पना) इसमें है। आहाहा।

ऐसी स्वतंत्रता है। **प्रत्येक द्रव्य भी स्वतंत्र, गुण भी स्वतंत्र, पर्याय उस उस समय**

में होनेवाली पर्याय वह भी उसका अपना धर्म है, इसलिये स्वतंत्र है, उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं। आहाहाहाहा ! यह पत्रा ऊँचा हुआ- ऐसा (पू. गुरुदेव श्री हाथ से पत्रा उठाते हुये) उसको इस अंगुली की अपेक्षा नहीं। उसका पर्याय धर्म ही उस समय उसप्रकार का होने का है। आहाहा ! (श्रोता: पर की अपेक्षा हो तो पर्याय स्वतंत्र नहीं रही) पर्याय स्वतंत्र है 'पर से हो वह पर्याय' एक व्यक्ति ने - ऐसा लिखा था, लेख में आया था पर से हो वह पर्याय उन बंसीधरजी ने बहुत ज्यादा लिखा है, परंतु पर से हो वह पर्याय नहीं। पर्याय, अपनी उस समय की अवस्था उत्पन्न होने की योग्यता है, अपने कारण, चाहे तो विकाररूप हो चाहे तो अविकार रूप हो, परंतु उस उस समय होने की उस पर्याय की योग्यतारूप धर्म अपना अपने से अपने में है। वास्तव में तो छह द्रव्य की पर्याय षट्कारक रूप से परिणमने के कारण उसे पर की अपेक्षा तो नहीं परंतु उसे अपने द्रव्य गुण की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? समझ में आता है ?

छहों द्रव्य, भगवान ने छह द्रव्य (देखे हैं) संख्या अपेक्षा अनंत, जाति अपेक्षा छह, परंतु, अनंत द्रव्य अपनी अपनी पर्याय के षट्कारकरूप से कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। इससे वह पर्याय, स्वयं सिद्ध (है)। **पर की अपेक्षा बिना और द्रव्य गुण के आश्रय और आधार बिना षट्कारकरूप परिणमना - ऐसा उनकी पर्याय का धर्म है** (जिज्ञासा:- आधार है कि नहीं महाराज) आधार यह पर्याय का आधार पर्याय। गुण का आधार नहीं - ऐसा है। आहाहा ! - ऐसा है यह (पंचास्तिकाय) बासठवी गाथा में आया है ना ? वहाँ चर्चा हुयी थी ना बासठ गाथा, विकार है वह षट्कारक का परिणमन स्वतः है। जिसे पर कारक की अपेक्षा नहीं, अपने में विकार होने में षट्कारक कर्त्ता, कर्म, पर्याय कर्त्ता, पर्याय कार्य, पर्याय साधन करण, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण, **उसे पर साधन की तो अपेक्षा नहीं परंतु (अपने ही) द्रव्य गुण की (भी) अपेक्षा नहीं** - ऐसा कहा था तब कठिन लगा, एक (पं.) फूलचन्दजी ने स्वीकार किया था। (पं.) फूलचन्दजी कहते थे कि स्वामीजी - ऐसा कहते हैं कि निश्चय से विकार के षट्कारक पर्याय के पर्याय में अपने कारण से होते है, दूसरों के कारणों की उसे अपेक्षा नहीं। पर के कारणों कर्त्ता, कर्म की उसे अपेक्षा नहीं। आहाहा ! यह तो सं. २०१३ की चर्चा (है) इक्कीस वर्ष हो गये।

यहाँ सं. २००३ में चर्चा हुयी थी, सभी पण्डित एक एकत्र हुये थे ना, बत्तीस तेत्तीस (विद्वान) विद्वत परिषद हुयी थी ना ? तीसरी साल उसे इक्कीस वर्ष हुये उस समय एक पण्डित थे। वह सर्वज्ञपना नहीं मानते थे- ऐसा कहते थे कि पर्याय

होती है वह पर की अपेक्षा हो तो होती है। यहाँ तो कहा है पर की अपेक्षा तो नहीं परंतु अपने द्रव्य गुण की अपेक्षा नहीं। पण्डितजी - ऐसा है। (श्रोता :- उन्होंने बनारस से न्याय पढ़ा था) वह नहीं मानते थे। यह चर्चा ललितपुर में बहुत हुयी थी ललितपुर में उन्होंने सुना नहीं और बाहर की बातें सुनी तो उसमें थोड़ा...।

- ऐसा परम सत्य परमात्मा, त्रिलोकनाथ तीर्थकर का कहा हुआ, सर्वज्ञ से जाना हुआ, देखा हुआ, प्रत्यक्ष किया हुआ, और वाणी-वाणी के कारण प्रत्यक्ष निकली। वाणी के कारण निकली। भगवान सर्वज्ञ हैं अतः वाणी निकली - ऐसा नहीं है। आहाहा ! कारण कि वाणी के शब्द हैं परमाणु उनकी वाणी रूप पर्याय, षट्कारक रूप में पर्याय कर्त्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण-साधन, भाषा की पर्याय, पर्याय से होती है ! ऐसी बात है, ओंठ से नहीं आत्मा से नहीं, इच्छा से नहीं, वह भाषा की पर्याय भाषा के परमाणु (भाषावर्गणा) से भी नहीं - ऐसा है। पर्याय के षट्कारकरूप सत् है ना ? द्रव्य सत्, गुणसत्, पर्यायसत्। सत् हो उसे हेतु (निमित्त) की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं सिद्ध सत् अपनी अपेक्षा से सत् है। पर के कारण पर्याय होती नहीं, बहुत कठिन लगता है, एकांत लगे ना ? आहाहा !

'आत्मा के अनंत धर्मों में चेतनपना खास धर्म है' यह असाधारण खास एक ही ये धर्म उसका है।' चारित्र, श्रद्धा, अस्तित्व, वस्तुत्व, समकित, आदि सभी गुण हैं, पर्याय हैं परंतु यह गुण अपने को जानते नहीं। ज्ञान गुण ही स्वयं, स्वयं को जानता है और पर को जानता है। आहाहाहा ! - ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आत्मा के अनंत धर्मों में, अनंत गुण और पर्याय में चेतनपना खास धर्म है 'दूसरे अचेतन द्रव्यों में नहीं, सजातीय जीव द्रव्य अनंत हैं' दूसरी आत्मार्यें भी अनंत हैं। 'फिर भी जबकि उनमें चेतनपना है, तब भी सभी का चेतनपना अपने स्वरूप से भिन्न भिन्न है।' इसका चेतनपना और दूसरी आत्मा का चेतनपना भिन्न भिन्न है। इसके चेतनपने के कारण उसका चेतनपना है - ऐसा नहीं, और उसके चेतनपने के कारण इसका चेतनपना है - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा स्वतंत्र द्रव्य का स्वरूप है। इसे जाने नहीं और धर्म हो जाय उसे ? आहाहा ! पर की दया पालो, व्रत करो, उपवास करो यह तो सभी राग है और (यदि) कर्त्तापना मानता है तो वह मिथ्यात्व है। राग का कर्त्तापना ज्ञान को सोंपे... ज्ञान का स्वरूप तो जानता है, उसका स्वरूप चेतन जानना है। जाननेवाले को करना सोंपें यह तो मिथ्यात्व है। आहाहाहा !

'सजातीय' अपनी जाति के 'जीवद्रव्य अनंत हैं।' उनमें यद्यपि चेतनपना है सभी में, तो भी सबका चेतनपना निजस्वरूप में भिन्न-भिन्न कहा है। आहाहा ! क्योंकि सभी द्रव्यों के प्रदेशभेद होने से 'सभी के अंश प्रदेश भिन्न (भिन्न) हैं।' आहाहा ! किसी

के किसी में मिलते नहीं, अनंत आत्माओं में सभी में चेतनपना होने पर भी, अपने प्रदेश में रहता है। किसी के प्रदेशों में वह चेतनपना जाता नहीं। अतः अपने प्रदेश में रहनेवाला चेतनपना पर प्रदेशों में जाता नहीं पर के प्रदेश में रहनेवाला चेतनपना यहाँ आता नहीं। यह तो समझ में आये ऐसी बात है। एक घण्टे में कितना याद रखना ? यह तो सरल भाषा है यह कोई बहुत कठिन भाषा नहीं।

‘यह चेतनपना अपने अनंत धर्मों में व्यापक है, है ? अपने आत्मा के अनंत गुण है ना उसमें चेतनपना व्यापक है, पसरा हुआ है। व्याप्त है, है यह (ज्ञायक) **‘इसलिये उसे आत्मा का तत्त्व कहा है’** आत्मा का तत्त्व यह (है) क्योंकि चेतन अनंत धर्मों में व्यापक है इसलिये चेतन को आत्मा का तत्त्व कहा है। चेतनपना अपना एक असाधारण तत्त्व (धर्म) है और वह चेतन अनंत धर्मों में रहता है, फैला हुआ है, इसलिये चेतन को आत्मा का तत्त्व कहने में आया है। (अब वह अलग अलग कैसे आया, व्याप्य कैसे हुआ) व्यापा हुआ है ना। (व्याप्य तो है) यह असंख्य प्रदेश में फैला हुआ है इतना ही। (लेकीन ये असंख्य प्रदेश) वह नहीं। उसके प्रदेश का स्वभाव एक प्रदेश में अनंत गुण एकसाथ रहते हैं इस अपेक्षा व्यापक है।

जहाँ ज्ञान है वहाँ दर्शन है, वहाँ आनंद है, उन उन प्रदेशों में अनंत इसप्रकार व्यापे है। **यह चेतन अनंत गुणों में व्यापक है इसलिये चेतन को आत्मा का तत्त्व कहा है।** आहाहा ! भिन्न भिन्न गुण होने पर भी चेतनतत्त्व अनंत गुणों में व्यापक है ना, जहाँ श्रद्धा है वहाँ चेतन है, चारित्र है वहाँ चेतन है, अस्तित्व है वहाँ चेतन है, चेतनपना भले ही अस्तित्व रूप नहीं होता फिर भी उसके अनंत धर्मों में चेतनपना पसरकर रहा है ना ! - ऐसा है।

यह तो तत्त्वज्ञान का विषय है। दूसरे श्लोक की तो शुरुआत ही चलती है आहा !

फिरसे, **‘वह चेतनपना अपने अनंत धर्मों में व्यापक है’ व्यापक है, (परंतु) पर रूप (अन्यगुणरूप) हुआ है - ऐसा यहाँ नहीं है। वैसे तो फैला हुआ है। जहाँ आनंद है वहाँ चेतन है, अस्तित्व है वहाँ भी चेतन है इतना। यह चेतन अस्तित्वरूप हुआ है या अस्तित्व है या चेतनरूप से हुआ है - ऐसा नहीं, परंतु वह सभी अनंत गुणों में चेतन इसप्रकार फैले है, इस अपेक्षा से उसे आत्मा का तत्त्व कहा जाता है।** आहाहाहा ! साधारण व्यक्ति को अभ्यास न हो और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय करके इच्छामि प्रतिक्रमण याद कर डाले, सामायिक कर डाले, हो गया (धर्म) जाओ ! यहाँ तो **‘अनंत धर्मणस्तत्त्वं’** - ऐसा शब्द है ना ? मूल श्लोक में, है ना ? अनंत धर्मणस्तत्त्वं यह शब्द है ना पहले पद में। **‘पश्यंती प्रत्यगात्मनः’** उसकी व्याख्या की

है 'अनंत धर्मणस्तत्त्वं पश्यंती' यह अनंत धर्मों में व्यापक चैतन्य तत्त्व - ऐसा, पश्यंती यह सभी को देखता है।

सर्वज्ञ सभी को (जानें) और श्रुतज्ञान सभी को (जाने) और वाणी सभी को कहती है, यह अनंत धर्मणस्तत्त्वं की व्याख्या की। आहाहा ! पहला पद है उसका कि आत्मा में अनंत धर्म अर्थात् गुण और पर्याय है, उसमें चेतनतत्त्व है, वह सभी गुण पर्याय में फैला हुआ है। इसप्रकार (हाथ से इशारा करते हुये) रहा हुआ है। दूसरे गुण (या) पर्यायरूप से हुआ है - ऐसा नहीं। अन्य गुणों की पर्याय रूप चेतना के गुण और पर्याय हुये हैं - ऐसा नहीं, परंतु सभी गुण की पर्याय में यह चेतनपना व्यापकर फैलकर रहा हुआ है। इस अपेक्षा उसे आत्मा का चेतन तत्त्व कहा है। आहाहा ! अनंत धर्मणस्तत्त्वं। समझ में आया ?

इसमें तो अंदर लिखा है उसका अर्थ है। सामने पुस्तक तो रखी है आहाहा ! कितनी सरल भाषा में पं. जयचन्द्रजीने लिखा है यह। पहले के पण्डित... पण्डित जयचन्द्रजी, पण्डित राजमलजी, टोडरमलजी, बनारसीदास बहुत बड़ा काम कर गये हैं। बहुत काम कर गये। मध्यस्थ (थे)। जो सत्य था वह बाहर किया। किसी का पक्ष नहीं। अभी तो एक पण्डित कहते हैं कि निमित्त से होता है, दूसरा कहता है कि निमित्त से नहीं होता, निमित्त होता है परंतु इससे होता नहीं, अब मुश्किल ! एक पण्डित कहते हैं, व्यवहार से निश्चय होता है, दूसरा कहता कि भाई व्यवहार हो अवश्य, विषय है इसलिये व्यवहार हो, परंतु उससे निश्चय हो - ऐसा नहीं। कारण व्यवहार राग और दुःख है और धर्म है वह सुख है। दुःख से सुख होता नहीं, लो यह बड़ा विवाद है। क्या करें ? (जो ताकतवर हो उसके सामने विवाद हो) हो, हो विरोध हो ! करते हैं करते हैं। अब टंडा होता जा रहा है थोड़ा थोड़ा कुछ बाहर पढ़ते हैं ना, लोग पढ़ते हैं। बीस लाख शास्त्र छप गये हैं, लाखों अन्य अन्य तरह की छपनेवाली है। यहाँ कहाँ गुप्त बात रखना है, एक पुस्तक थोड़े ही है यहाँ तो बीस लाख पुस्तके हैं, करोड़ों रूपयों की तो पुस्तके हो गयी हैं। करोड़ों के मंदिर हो गये हैं। करोड़ों के यहाँ मकानादि हो गये (है)। यह कहीं गुप्त नहीं। आहाहा !

यहाँ तो अनंत धर्मणस्तत्त्वं पहला शब्द है उसका स्पष्टीकरण किया कि चेतन को अनंत धर्म का तत्त्व क्यों कहा ? कि चेतन है यह असाधारण है दूसरों के गुण उसमें नहीं, उसीप्रकार यह चेतना दूसरों में नहीं, एक बात, और यह चेतन अपने अनंत धर्मों में पसरा हुआ है, व्याप्त है। **अनंत धर्मसे हुआ है - ऐसा नहीं लेकिन अनंत धर्म में व्याप्त है, इस अपेक्षा से चेतन को आत्मतत्त्व कहा जाता है**

आहा !

‘उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है’ देखा ? किसे ? आत्मतत्त्व को-कौन तत्त्व को ? कि चेतनतत्त्व को कैसा चेतनतत्त्व ? कि अंदर में व्यापक है अनंत धर्मों में उसे। ऐसे चेतन तत्त्व को सर्वज्ञ की पर्याय देखती है, श्रुतज्ञान की पर्याय देखती है, वाणी उसे दिखाती है, आहाहा ! ‘उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है और दिखाती है’ यह वाणी। केवलज्ञान और श्रुतज्ञान देखता है और वाणी उसे दिखाती है।

‘इस प्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है’ देखा ? आहाहा ! अनंत धर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यग् आत्मनम्। आहाहा ! यह कहा ना ? **अनेकांतमयी मूर्ति नित्यमेव प्रकाशताम्** नित्य जयवंत रहो। केवलज्ञान हमेशा प्रगट रहो, श्रुतज्ञान साधकरूप में कायम रहो और उसे बतानेवाली वाणी भी जगत में कायम रहो - आहाहा !

‘इसप्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है।’ देखा ? केवलज्ञान से कल्याण होता है श्रुतज्ञान से होता है, और वाणी भी निमित्त है, निमित्त है। निमित्त से कल्याण होता है (- ऐसा नहीं) होता है अपने से, परंतु उसमें वाणी निमित्त है इसलिये उसे भी कल्याण का कारण कहते हैं निमित्त का अर्थ इतना है कि वह वस्तु है। परंतु वह पर में करती है और पर को कुछ करती हो तो वह निमित्त ही नहीं रहता वह तो उपादान हो जाता है। आहाहा ! वस्तु स्थिति जैसी है वैसी न्याय से जाननी पड़ेगी ना ?

इसप्रकार उससे सभी प्राणियों का कल्याण होता है ठीक ! यहाँ तो सर्व प्राणियों का उससे कल्याण होता है। **कल्याण होनेवाले का कल्याण होता है तो (- ऐसा कहा जाता है)। सर्व प्राणियों का इससे ही कल्याण होता है।** कल्याण करनेवाले (अपना कल्याण) करते हैं, केवलज्ञान, श्रुतज्ञान और वाणी। आहाहा ! अतः सर्वप्राणियों का कल्याण होता है। ‘इसलिये सदा प्रकाशरूप रहो’ - ऐसा है ना आखरी शब्द, देखो... प्रकाशताम् है ना ? ‘नित्यमेव प्रकाशताम्’ चौथा पद है। नित्यम ‘एव’ सदा ही प्रकाशमान्, सदा ही नित्यम् ‘एव’ एव अर्थात् निश्चय, नित्य ही, प्रकाशमान, केवलज्ञान नित्य प्रकाशमान रहो, श्रुतज्ञान नित्य प्रकाशमान रहो और वह चैतन्य तत्त्व जो अपने अनंत धर्म में व्यापक है इसलिये उस चैतन्य तत्त्व को आत्मतत्त्व कहा। उसे बतानेवाली वाणी भी सदा प्रकाशमान रहो। यह निमित्त से (कथन) है, समझ में आया ?

नहीं पकड़ में आया हो तो रात्री को चर्चा में (पूँछना) (..... प्रश्न पूँछेंगे तो हमारी पोल खुल जायेगी) पोल खुल जायेगी तो उससे स्पष्ट होगा उसमें क्या है ? पोल (खुलने से) पक्का हो जायेगा, पोल में पक्का हो जाय, पोल खुल जाय तो पोल (भरजाय) पक्की हो जाय श्रोता (आप जान लोगे) ध्यान रख कर सुनते नहीं

- ऐसी पोल खुल जाय। अपरिचित वस्तु है इसलिये उसे न भी पकड़ सके! यह तो अलौकिक बातें है बापू ! आहाहाहा !

'सदा प्रकाशरूप रहो एसा आशीर्वचन रूप उसे कहा है' आहाहा ! पं. जगमोहनलालजी - ऐसा कहते हैं, बड़े आदमी छोटे आदमी को आशीर्वाद कैसे दें ? - ऐसा कहते हैं वाणी है वह छोटी है और बड़े आदमी उसे कैसे आशीर्वाद दें ? परंतु उसका अर्थ यह रहा, यह प्रकाशित रहो - ऐसा, इसमें - ऐसा अर्थ लिखा है देखो ! इसका अर्थ किया है ना ?

अभी यह दो श्लोक हुये - 'नमः समयसाराय' यह श्लोक हुआ और 'अनंत धर्मणस्तत्त्वम्' यह श्लोक हुआ, दो श्लोक हुये। अर्थात् प्रथम देव का श्लोक हुआ, दूसरा वाणी का हुआ, शास्त्र का। देव और शास्त्र दोनों का हुआ। अब देव-शास्त्र-गुरु तीन... अब रहे गुरु। वह स्वयं गुरु हैं अतः अपनी बात (स्तुति) न करके, स्वयं टीका करनेवाले हैं। आहाहा ! तो टीका करते हमारा गुरुपना, जो मुनिपना है शुद्ध, उसकी वृद्धि हो - ऐसा कहेंगे। टीका करते हुये... ऐसी भाषा लिखी है, समयसार व्याख्या एव, 'एव' शब्द है 'एव' भी उसका अर्थ इस समयसार की व्याख्या के समय में। नहीं तो - ऐसा तो है कि टीका समयसार व्याख्या एव-समयसार की टीका करते समय, टीका के समय हमारी शुद्धि हो, और अशुद्धि नष्ट हो, उसका अर्थ यह कि मैं समयसार की टीका करूंगा उस समय मेरा झुकाव द्रव्य का ध्येय ध्रुव ऊपर हमेशा रहेगा, उससे अशुद्धि टलेगी और शुद्धि बढ़ेगी। समझ में आया। आहाहाहाहा ! कारण कि टीका करते समय हमारा लक्ष्य अर्थात् जोर तो ध्रुव ऊपर रहता है। हमारी दृष्टि का विषय त्रिकाली ध्रुव है, वह कभी छूटता नहीं। चाहे जैसा ज्ञान और चाहे जैसी वाणी हो परंतु जो ध्रुव नित्यानंद प्रभु है, हमारी दृष्टि का परिणमन उसके ऊपर हुआ है। आहाहाहा !

ध्यान में हमने जिसे ध्येय बनाया है, यह ध्येय कभी हटेगा नहीं। आहाहा ! अतः टीका में भाषा ऐसी आयेगी। समयसार व्याख्या एव, समयसार की टीका से ही... टीका से ही - ऐसा आयेगा। परंतु उसका अर्थ - ऐसा है कि समयसार की टीका के कालमें आहाहा ! पण्डितजी ! हमारे लक्ष्य की धारा ध्रुव ऊपर लगी है। आहाहा ! इससे हमको टीका करते समय अशुद्धि है उसका नाश हो और शुद्धि प्रगट हो.....। विशेष व्याख्या करेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

